

श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 6 अध्याय 11: वृत्र की महिमा

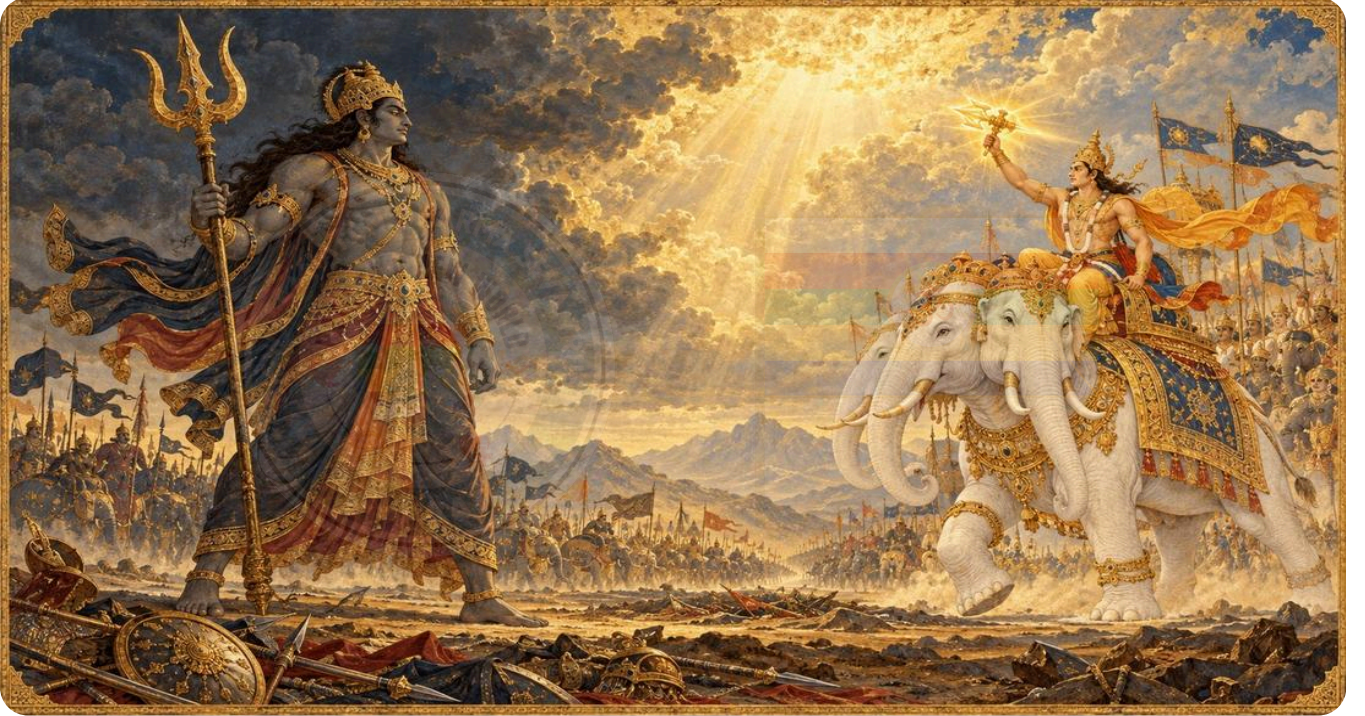
3 October 2026



पाठ से पहले एक निवेदन

श्रीमद्भागवत महापुराण के ये अध्यायवार सार गीता प्रेस भागवत को मुख्य आधार मानकर तैयार किए गए हैं। ये भागवत के अध्ययन में सहायक हैं, मूल ग्रंथ का स्थान नहीं ले सकते।

अध्ययन का मुख्य और अनुशंसित मार्ग गीता प्रेस की भागवत पुस्तक से सीधा पाठ है। यात्रा में, घर से दूर, या जब पुस्तक पास न हो, तब निरंतर अध्ययन, पुनरावृत्ति और समझ के लिए इन सारों का सहारा लिया जा सकता है।



युद्धभूमि पर अकेला विशाल खड़ा राक्षस वृत्र इन्द्र के वज्र के सम्मुख अपना त्रिशूल उठाता है — फिर भी उसका हृदय पूर्णतः भगवान् की ओर मुड़ा है, और उसके मुख से शाप नहीं, अपितु समस्त भागवत की सबसे पवित्र समर्पण-प्रार्थनाओं में से एक प्रवाहित होती है।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम में आपका स्वागत है — श्रीमद्भागवत महापुराण की पावन कथाओं और शिक्षाओं की एक भक्तिपूर्ण यात्रा। षष्ठ स्कन्ध का ग्यारहवाँ अध्याय एक विस्मयकारी रहस्य प्रकट करता है: कि राक्षस वृत्र के भयंकर रूप के भीतर भगवान् के एक महान् भक्त का हृदय धड़कता था। अपनी भागती सेना से त्यक्त होकर, वृत्र देवताओं की कायरता को फटकारता है, संग्राम में उन्हें परास्त करता है, और फिर — इन्द्र

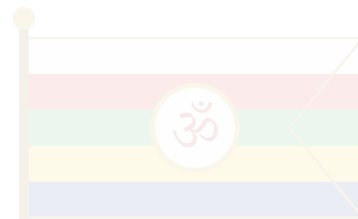
के वज्र के सम्मुख — एक ऐसी प्रार्थना उँडेलता है जो इस संसार से कुछ नहीं माँगती, केवल जन्म-जन्म भगवान् नारायण की सेवा का अनन्त सौभाग्य।

अध्याय-परिचय

- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण
- स्कन्ध: 6 (षष्ठ स्कन्ध)
- अध्याय: 11 (एकादश अध्याय)
- अध्याय-शीर्षक: वृत्रासुर की दिव्य महिमा
- मुख्य वक्ता: श्रीशुकदेव गोस्वामी, राजा परीक्षित को कथा सुनाते हुए; कथा के भीतर राक्षस वृत्र
- मुख्य श्रोता: राजा परीक्षित; बाह्य कथा में नैमिषारण्य के ऋषिगण
- मुख्य स्थल: नर्मदा नदी के तट पर युद्धभूमि
- केन्द्रीय विषय: वृत्र का शौर्य, देवताओं को उसका उपदेश, और उसकी शुद्ध भक्ति की प्रार्थना
- मुख्य श्लोक-परिधि: स्कन्ध 6, अध्याय 11, श्लोक 1-27
- मुख्य संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण

वृत्र देवताओं को फटकारता है

भय से व्याकुल और केवल पलायन पर ही आमादा, राक्षसों ने अपने नायक के उस परामर्श पर ध्यान नहीं दिया जो उन्हें निर्भय मृत्यु की शिक्षा दे रहा था। अपने सैन्य को बिखरते देखकर क्रोध से भरकर, वृत्र ने अपनी शक्ति से देवताओं को रोका, और उन्हें धिक्कारते हुए कहा: “इन भगोड़ों को पीछे से मारकर तुम क्या पाओगे, जो अपनी माता के मल से भी हीन हैं? भयभीतों का वध न तो प्रशंसनीय है और न ही उन लोगों के लिए स्वर्ग का मार्ग जो स्वयं को वीर मानते हैं। यदि लड़ने की इच्छा है, और यदि तुम्हारे हृदय में कुछ साहस है, हे नीच जनो, तो एक क्षण के लिए मेरे सामने खड़े हो जाओ।” (श्लोक 1-5)





भागते देवताओं को ललकारते हुए वृत्र उनकी कायरता को फटकारता है और इतना भयंकर गरजता है कि देवगण भूमि पर मूर्च्छित गिर पड़ते हैं (श्लोक 1-7)।

संग्राम

इस प्रकार देवसेना को ललकारते हुए और क्रोध से भरकर, वृत्र इतना भयंकर गरजा कि लोग उस ध्वनि से मूर्च्छित हो गए; मानो बिजली से आहत होकर, देवगण भूमि पर गिर पड़े। अपना शूल उठाकर और पृथ्वी को कँपाते हुए, राक्षस ने मूर्च्छित सेना को अपने पैरों तले ऐसे रौंदा जैसे गजराज कमल-शय्या को रौंद डालता है। क्रोध से भरकर इन्द्र ने राक्षस पर एक विशाल गदा फेंकी, जिसे उसने विनोदपूर्वक अपने बाएँ हाथ से पकड़ लिया और उसी से ऐरावत के सिर पर प्रहार किया। बिजली से आहत पर्वत के समान चोट खाकर, वह दिव्य गज इन्द्र को लेकर अट्टाईस हाथ पीछे लड़खड़ा गया और रक्त वमन करने लगा (श्लोक 6-11)।

किन्तु उस उदार आत्मा वृत्र ने खिन्न इन्द्र पर दूसरी बार प्रहार नहीं किया। अपने अमृत बरसाते हाथ के स्पर्श से इन्द्र ने अपने घायल गज को स्वस्थ किया और पुनः अपने शत्रु के सम्मुख खड़े हो गए। इन्द्र को — अपने भ्राता विश्वरूप के संहारक को — वज्र धारण किए और द्वन्द्व-युद्ध चाहते देख, वृत्र उस क्रूर कर्म का स्मरण कर शोक से भर गया, और हँसते हुए बोलने लगा (श्लोक 12-13)।



वृत्र इन्द्र की फेंकी गदा को विनोदपूर्वक बाएँ हाथ से पकड़कर ऐरावत पर प्रहार करता है, फिर भी खिन्न इन्द्र को दूसरा प्रहार नहीं करता (श्लोक 9-12)।

वृत्र के निर्भय वचन

“मेरे सौभाग्य से,” वृत्र ने कहा, “तुम, जिसने एक ब्राह्मण — अपने ही गुरु और मेरे भ्राता — का वध किया, मेरे सम्मुख मेरे प्रतिद्वन्द्वी के रूप में दृढ़ खड़े हो। आज, जब मेरा त्रिशूल तुम्हारे पाषाण-हृदय को बेध देगा, मैं अपने भ्राता का ऋण चुका दूँगा।” उसने इन्द्र को उस निर्दोष विश्वरूप के निर्मम शिरच्छेद की स्मृति दिलाई, जो स्वयं इन्द्र के ही निमित्त यज्ञ में लगे थे, और घोषणा की कि यदि इसके बदले उसका अपना सिर वज्र से कट जाए, तो वह सहर्ष अपना शरीर पक्षियों और वन्य प्राणियों को अर्पित कर देगा और, प्रत्येक कर्म-ऋण से मुक्त होकर, ज्ञानी आत्माओं के चरण-रज को प्राप्त करेगा (श्लोक 14-18)।

फिर ऐसे वचन आए जो कोई साधारण राक्षस नहीं कह सकता। “हे देवराज, तुम अपना अमोघ वज्र मुझ पर, जो तुम्हारे सम्मुख खड़ा हूँ, क्यों नहीं चलाते? इसमें कोई संशय न करो: यह वज्र, श्रीहरि के तेज तथा ऋषि दधीचि की तपस्या से तीक्ष्ण किया गया, कभी निष्फल नहीं होगा, क्योंकि विजय, सौभाग्य और प्रत्येक गुण केवल उसी पक्ष की ओर झुकते हैं जिस पर श्रीहरि स्थित हैं। जैसा उन्होंने मुझे शिक्षा दी है, अपने मन को भगवान् संकर्षण के चरण-कमलों पर स्थिर करके, और इन्द्रियों के प्रति अपने आसक्ति-बन्धन तुम्हारे वज्र से छिन्न होने पर, मैं यह शरीर त्यागकर एक चिन्तन-लीन ऋषि की गति प्राप्त करूँगा।” (श्लोक 19-21)



वज्र के सम्मुख, वृत्र इन्द्र को निःसंकोच प्रहार करने को कहता है, क्योंकि विजय उसी पक्ष की ओर झुकती है जिस पर श्रीहरि स्थित हैं (श्लोक 13-21)।

एक शुद्ध भक्त की प्रार्थना

यहाँ अध्याय अपने सच्चे हृदय में खुलता है। भगवान्, वृत्र ने कहा, अपने अनन्य भक्तों को स्वर्ग, पृथ्वी अथवा पाताल-लोकों के ऐश्वर्य नहीं देते — क्योंकि ऐसे धन से द्वेष, भय, संताप, अहंकार, कलह, दुःख और श्रम उत्पन्न होते हैं। वस्तुतः स्वामी अपने सेवक के धर्म, अर्थ और काम के प्रयासों को प्रेमपूर्वक विफल कर देते हैं; और उसी विफलता से भगवान् की कृपा का अनुमान होता है, एक ऐसी कृपा जो उन्हीं को मिलती है जिनके पास अपना कहने को कुछ नहीं, और जो दूसरों के लिए दुर्लभ है (श्लोक 22-23)।

फिर वृत्र ने प्रार्थना की। “हे हरि, मैं पुनः जन्म लूँ उन भक्तों के सेवक के रूप में जिन्होंने आपके चरण-कमलों में एकमात्र शरण ली है। मेरा मन आपके गुणों पर मनन करे, मेरी जिह्वा उन्हें गाए, और मेरा शरीर केवल आपकी सेवा करे।” और उसने भगवान् के अतिरिक्त कुछ नहीं माँगा (श्लोक 24-25)।

न नाकपृष्ठं न च पारमेष्ठ्यं
न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम् ।
न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा
समञ्जस त्वा विरहय्य काङ्क्षे ॥ २५ ॥

*na nāka-prṣṭhaṁ na ca pārameṣṭhyaṁ na sārva-bhaumaṁ na rasādhīpatyam na yoga-siddhīr
apunar-bhavaṁ vā samāñjasa tvā virahayya kāṅkṣe*

अर्थ: हे पूर्णकाम भगवन्, यदि आपसे वियोग हो तो मैं न ध्रुव का धाम चाहता हूँ, न ब्रह्मा का लोक, न पृथ्वी का साम्राज्य, न पाताल का आधिपत्य, न योग की सिद्धियाँ, और न ही पुनर्जन्म से मुक्ति। (स्कन्ध 6, अध्याय 11, श्लोक 25)

जैसे पंखहीन पक्षी-शिशु उस माता को देखने को लालायित रहते हैं जो उन्हें खिलाती है, जैसे भूखे बछड़े गौ के दूध के लिए तरसते हैं, जैसे एकाकी पत्नी अपने प्रवासी पति के लिए तरसती है, वैसे ही, उसने कहा, उसका मन उस कमल-नयन भगवान् को देखने के लिए तरसता था (श्लोक 26)। उसकी एकमात्र याचना थी पवित्र संगति — भगवान् के भक्तों की मैत्री — और उसका एकमात्र भय था सांसारिक जनों की संगति।

ममोत्तमश्लोकजनेषु सख्यं
संसारचक्रे भ्रमतः स्वकर्मभिः ।
त्वन्माययात्मात्मजदारगेहे-
ष्वासक्तचित्तस्य न नाथ भूयात् ॥ २७ ॥

mamottamaśloka-janeṣu sakhyam saṁsāra-cakre bhramataḥ sva-karmabhiḥ tvan-māyayātmātmaja-dāra-geheṣv āsakta-cittasya na nātha bhūyāt

अर्थ: जब मैं अपने ही कर्मों से जन्म-मृत्यु के चक्र में भटकता हूँ, तब मेरी मैत्री केवल आपके उत्तम कीर्ति वाले भक्तों से हो; और हे नाथ, मेरी कभी ऐसे किसी से मैत्री न हो जिसका मन आपकी माया से शरीर, सन्तान, पत्नी और घर में बँधा है। (स्कन्ध 6, अध्याय 11, श्लोक 27)



मृत्यु एक श्वास दूर होने पर भी, वृत्र का हृदय भगवान् के चरणों में विश्राम करता है, केवल सेवा और पवित्र संगति के लिए तरसता हुआ (श्लोक 24-27)।

ऐसा था उस राक्षस का हृदय जो स्वर्ग के विरुद्ध शस्त्र लिए खड़ा था: एक हृदय जो पहले से ही भगवान् के चरणों में था, केवल उनके भक्तों की शरण और उनकी सेवा की मधुरता के लिए तरसता हुआ।

इस अध्याय को प्रमुख शिक्षाएँ

1. भक्ति सबसे अप्रत्याशित हृदय में भी चमक सकती है। वृत्र, जन्म से राक्षस और युद्ध में भयंकर, भगवान् के प्रति ऐसे प्रेम की पवित्रता प्रकट करता है जो देवताओं को लज्जित कर देती है (श्लोक 14)।
2. सच्चा भक्त भगवान् के अतिरिक्त कुछ नहीं चाहता। वृत्र स्वर्ग, साम्राज्य, योग-सिद्धियाँ और मोक्ष तक को ठुकरा देता है, केवल जन्म-जन्म भगवान् की सेवा माँगते हुए (श्लोक 25)।
3. भगवान् की कृपा हानि-सी प्रतीत हो सकती है। जब भगवान् अपने सेवक से सांसारिक सफलता रोक लेते हैं, तो यह उपेक्षा नहीं अपितु दया है, जो उसे धन से उपजने वाले अहंकार और बन्धन से बचा लेती है (श्लोक 22-23)।
4. तड़प प्रेम की भाषा है। वृत्र भगवान् के लिए अपनी व्याकुलता की तुलना एक चूजे, एक बछड़े और एकाकी पत्नी की असहाय तड़प से करता है — एक ऐसा प्रेम जो अपने लक्ष्य से कम किसी वस्तु से तृप्त नहीं होता (श्लोक 26)।
5. पवित्र संगति ही माँगने योग्य एकमात्र वस्तु है। उसकी एकमात्र प्रार्थना भक्तों की मैत्री और सांसारिक जनों के प्रति आसक्ति से मुक्ति के लिए है (श्लोक 27)।

एक भक्तिपूर्ण चिन्तन

संसार को नायकों और खलनायकों में, देवताओं और राक्षसों में बाँट देना सरल है, और यह मान लेना कि भलाई केवल उन्हीं चेहरों में बसती है जिनकी हम आशा करते हैं। यह अध्याय मौन रूप से इस धारणा को चूर कर देता है। देवगण, अपनी समस्त दीप्ति सहित, युद्धभूमि से भाग जाते हैं; और वह राक्षस है जो उन्हें फटकारने को मुड़ता है, जो निर्दयता के बिना लड़ता है, जो अपने स्तब्ध शत्रु को दूसरा प्रहार नहीं करता, और जो, मृत्यु एक श्वास दूर होने पर, अपना हृदय भगवान् नारायण की ओर एक निर्दोष समर्पण की प्रार्थना में उठा देता है। वृत्र सौदा नहीं करता। वह जीतने को नहीं माँगता, न जीने को, न पुनर्जन्म से मुक्ति को भी। वह केवल इतना माँगता है कि उसके कर्म उसे चाहे जहाँ ले जाएँ, उसका मन भगवान् में लगा रहे, उसकी जिह्वा भगवान् की महिमा गाए, और उसका शरीर भगवान् के भक्तों की सेवा करे। यही सच्ची भक्ति की कसौटी है: कठिनाई का अभाव नहीं, अपितु एक ऐसा हृदय जो ईश्वर पर इतना स्थिर है कि वह वज्र के प्रहार को भी उस हाथ के रूप में सँजोता है जो उसकी अन्तिम आसक्ति काट देगा। श्रीमद्भागवत वृत्र को हमारे सम्मुख रखता है जिससे हम आत्माओं को उनकी बाह्य स्थिति से मापना छोड़ दें और भक्ति को वहाँ पहचानने लगे जहाँ वह सचमुच बसती है।

एक दैनिक भक्ति-अभ्यास

आज, अपनी प्रार्थनाओं के स्वरूप को देखिए। हम प्रायः भगवान् से सुरक्षा, सफलता, राहत, या किसी कष्ट के निवारण की याचना करते हैं। वृत्र के उदाहरण का अनुसरण करते हुए, कम से कम एक प्रार्थना ऐसी अर्पित कीजिए जो इस संसार से कुछ न माँगे — केवल भगवान् को स्मरण करने, उनका नाम लेने, और उनसे प्रेम करने वालों की सेवा करने की कृपा। यदि कोई कठिनाई नहीं हटती, तो विचार कीजिए कि उसका भार ही भगवान् की दया हो सकता है, जो आपकी पकड़ उस वस्तु से ढीली कर रहा है जो स्थायी नहीं, और मौन रूप से उसके लिए उन्हें धन्यवाद दीजिए।

उपसंहार

षष्ठ स्कन्ध का ग्यारहवाँ अध्याय भागवत के महान् विस्मयों में से एक है: एक राक्षस के भीतर एक सन्त का अनावरण। वृत्र साहस से और द्वेष के बिना लड़ता है, देवताओं को परास्त करता है, अपने गिरे शत्रु को छोड़ देता है, और फिर, वज्र अपने विरुद्ध तने हुए, केवल आने वाले प्रत्येक जन्म में भगवान् से प्रेम और सेवा करने की प्रार्थना करता है, उस प्रेम के लिए स्वर्ग और मोक्ष दोनों को ठुकराते हुए। जैसे-जैसे यह स्कन्ध अन्तिम द्वन्द्व और वृत्र के महिमामय प्रयाण की ओर बढ़ता है, हम उसकी अविस्मरणीय शिक्षा साथ ले चलते हैं: कि सबसे पवित्र प्रार्थना स्वयं ईश्वर के अतिरिक्त कुछ नहीं माँगती, और उनकी गहनतम कृपा है आत्मा को उस सब से दूर खींच लेना जो वे नहीं हैं।

श्रीमद्भागवतम् की दिव्य विद्या हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति जगाए।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

जय श्री माधव।

संदर्भ तथा साभार

- मुख्य संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भागवत महापुराण (अंग्रेज़ी, सम्पूर्ण), षष्ठ स्कन्ध, एकादश प्रवचन।
- शृंखला: Srimad Bhagavatam Wisdom · Biswa Sanatan Dharma Seva Trust।
- पण्डित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र के आध्यात्मिक मार्गदर्शन तथा अनुशंसा का अनुसरण करते हुए प्रस्तुत।

यह लेखक के अपने शब्दों में एक मौलिक, श्रद्धापूर्ण पुनर्कथन है, जिसमें संक्षिप्त उद्धृत श्लोक देवनागरी तथा लिप्यन्तरण में और उनके अर्थ सारांश के रूप में दिए गए हैं। यह किसी एक प्रकाशक के निरन्तर अनुवाद या टीका का पुनरुत्पादन नहीं है। किसी प्रकाशक द्वारा संबद्धता या समर्थन का कोई अभिप्राय नहीं है।

॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

जय श्री माधव

ऑनलाइन पढ़ें: kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-canto-6-chapter-11-glory-of-vritrasura-hi.html

श्रीमद्भागवतम् विज़डम · कल्कि अवतार इंटरनेशनल · बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट